भगवत् कृपा

स्वामी नारायण

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-1, अंक-2	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-10.00
मंगलवार, 12 जुलाई' 77	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.00

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

(पूर्ण पुरुषोत्तम श्री स्वामिनारायण)

The decent of the supreme spiritual Reality-an emergence from the supreme consciousness into an inconscient nature is mainly for infusing the divine power on earth whenever the morality of the people degenerates and they abondon all laws governing a spiritual life.

ऐतिहासक पूर्व भूमिका

भारत के इतिहास में वह एक विषम समय था जब मुगलों के शासन का पतन हो गया था, थोड़े-2 समय पर अपना तेज दिखाकर मराठों की सत्ता भी अस्त हो रही थी, सिखसत्ता के स्थापक पंजाबकेसरी रणजितसिंह अभी झूले में झूल रहे थे। ईस्ट इण्डिया कंपनी का आगमन हो गया था, अंग्रेज शासन की नींव डाली जा रही थी।

विक्रम की 18वीं शती की यह कथा है जब गुजरात में भयंकर अराजकता एवं आतंक फैल चुका था। मन चाहे तब पेश्वा और गायकवाड़ गुजरात को लूट रहे थे। ऐसी परिस्थिति में जब किसी का शासन नहीं था तब गुजरात के ही काठी, कोली, गरासिया आदि जाति के लोग डकैती को अपना व्यवसाय मान बैठे थे और जब चाहे तब प्रजा को लूट रहे थे। सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में परिस्थिति बदतर थी। समाज कुरिवाजों का भोग बन चुका था। श्रद्धा का स्थान अंधश्रद्धा-वहम ने लिया था। धर्मात्मा भोली प्रजा की श्रद्धा का अनुचित लाभ उठा रहे थे। त्रास, हिंसा, अज्ञान फैल गये थे और फैलाने वाले थे कौलिकपन्थी वाममार्गी, शुष्क-वेदान्ती इत्यादि। सती की प्रथा, बालहत्या इत्यादि अनाचार धर्म के नाम से हो रहे थे। ज्ञाति-जाति के, कुलीन-अकुलीन के भेदभाव ने उग्र स्वरूप ले लिया था। 6000 मील दूर से आए हुए अल्पसंख्यक विदेशी व्यापारियों ने अल्पसमय में ही समग्र भारत वर्ष को अपने सकंजे में ले लिया। यह इस बात की गवाही देता कि हमारा देश अधोगति के प्रति अग्रसर था।

जब ऐसी ग्लानिमय अवस्था थी तब जैसा की परमात्मा ने वचन दिया है इस पवित्र भारतभूमि पर आठ महापुरुषों ने जन्म लिए और भिन्न-भिन्न प्रदेशों को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर प्रजा की आत्मा को जागृत कर के धर्म के मूल दृढ़ किये।

- उत्तर में कार्य किया स्वामी रामतीर्थ और महर्षि दयानंद जी ने,
- पूर्व में रामकृष्ण परमहंसदेव और चैतन्य महाप्रभु ने,
- दक्षिण में श्री रामानुजाचार्य और स्वामी रामदास जी ने,
- पश्चिम में अखा स्वामिश्री सहजानंदजी ने।

यहां प्रस्तुत है कृपावतार सहजानंदस्वामिजी (स्वामिनारायण) और उनका जीवन कार्य।

प्रादुर्भाव और शिशुलीला

विशेषतः पश्चिम भारत का गुजरात प्रदेश जिनका कार्य क्षेत्र रहा वे सहजानंदस्वामि जी का प्रादुर्भाव हुआ था 'छपैया' गांव में। आज लखनऊ से गोरखपुर रेल लाईन पर अयोध्या से केवल दस मील की दूरी पर 'छपैया' स्वामिनारायण नामक छोटा सा स्टेशन है, वही है स्वामिजी की जन्मभूमि।

स्वामिजी का जन्म हुआ था मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के जन्मदिन-चैत्र शुक्ला नवमी (संवत् 1837) और तदनुसार सोमवार तारीख 3 अप्रैल, 1781 के रोज रात को दस बजे।

स्वामिश्री के पिताजी का नाम था हरिप्रसाद पांडे (धर्मदेव) और माताजी का नाम था प्रेमवती (भक्तिमाता)। जब शिशु तीन साल की आयु के हुए, तब नामकरण संस्कार हुआ और ऋषि मार्कण्डजी ने 'हरिकृष्ण' नाम दिया, किन्तु घर में और बाहर सब शिशु को 'घनश्याम' कहते थे। शिशुकाल में घनश्याम की मूर्ति अत्यन्त प्यारी थी। सब कोई उनको प्यार करते थे। घनश्याम भी अत्यंत प्रेम से शिशु सहज लीला करते हुए उन्हें दिव्यानंद की अनुभूति करवाते थे।

बचपन में ही घनश्याम स्वयं स्पष्टरूप से जानते थे कि वे साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण हैं और उनका प्रादुर्भाव अनेकों के कल्याण करने के लिये हुआ है। अतः उन्होंने लोकों के सद्गुण-दुर्गुण, उनकी अपात्रता-पात्रता, महत्ता-लघुता और उनके ज्ञान-अज्ञान, पाप-पुण्य, भक्ति-अभक्ति कुछ नहीं देखते हुए स्त्री हो या पुरुष—सबको समान रूप से अपनी मूर्ति के दर्शन का परम सुख प्रदान करके अक्षरधाम के अधिकारी बनाये।

इस आयु में भी घनश्याम असाधारण तेजस्वी थे और इस तथ्य की प्रतीति माता-पिता, भाई-भाभी, मित्रमण्डली और बुर्जुग सबको होती थी। इन सबको दिव्यता का दर्शन करवाने के लिए जिस समय जिस प्रकार के चरित्र की आवश्यकता लगी ऐसे चरित्र कर के वे इन्हीं के प्रीतिपात्र बने। इनका आचरण स्वतंत्र था। मस्ती और शरारत स्वभाव में निहित थे। परिणाम स्वरूप कभी कोई परेशान भी हो जाते थे। बाल घनश्याम के लिए भाई-भाभी समक्ष बाहरवालों की शिकायतें भी आती थी; भाई-भाभी उपालभ्य देते थे। घनश्याम क्षमा मांग लेते थे, किन्तु फिर वह ही शरारत। सब 'त्राहिमाम्' का पुकार करते थे।

घनश्याम की यह शिशुलीला का मूल्यांकन यदि आध्यात्मिक दृष्टि से किया जाय तो इनकी सारी लीला सकारण थी। इन्हें स्पष्ट था कि इस प्रदेश का त्याग मुझे 11 साल की अल्पायु में ही करना है,तो क्यों न भिन्न-भिन्न रुचि और प्रकृति वाले छोटे-मोटे सब ग्रामवासियों के साथ सखाभाव, पुत्रभाव, वात्सल्यभाव, मृदुता, दासभाव आदि भावजनित संबंध नहीं बनाया जाय? और क्यों उनका जीवन धन्य नहीं बनाया जाय?

घनश्याम की आयु जब छ साल की हुई तब उनके लघुभ्राता इच्छारामजी का जन्म हुआ। घनश्याम आठ साल के हुए तब इनका यथाविधि उपनयन संस्कार कराया गया और धर्मदेव ने इनको वैदिक वाङ्मय का अध्ययन कराया। बचपन में ही इन्होंने वेद-वेदाङ्ग इत्यादि कंठस्थ कर लिये। साथ-साथ तपश्चर्या का भी प्रारम्भ किया। मंदिर में जाना, कथा श्रवण करना आदि घनश्याम के आनंद के विषय थे और इन नियमों का पालन वह अत्यंत श्रद्धा और प्रीति से करते थे। मन में तीव्र वैराग्य का वेग था, अतः घर में भी वह अनासक्तभाव से रहते थे। अपने इस स्वभाव का वर्णन करते हुए उन्होंने 'वचनामृत' ग्रंथ में कहा है, 'देखो, मुझे बचपन में ही कार्तिक स्वामी के समान विचार आया कि मेरे शरीर में जो रुधिर एवं मांस (जो माता का भाग) है उस को रहने ही नहीं देना है। अतः असाधारण प्रयत्न से मैंने शरीर को शुष्क कर दिया—ऐसा शुष्क किया कि घाव लगे तो पानी निकले, रुधिर नहीं।'

निष्क्रमण

उपन्यन संस्कार के बाद घनश्याम तो भागवत धर्म-संस्थापन का-अपने अवतार का-प्रयोजन सिद्ध करने के लिये तुरन्त गृहत्याग करना चाहते थे, किन्तु माता-पिता को

निजस्वरूप की अनुभूति दे कर इनको दिव्यगति के अधिकारी बना कर संसार छोड़ना उन्हों ने ठीक समझा। अतः रुक गये। प्रथम भक्तिमाता की दिव्यगति हुई इसके बाद सात मास पश्चात् पिता अक्षरधाम में गये। पिता ने पुत्र को पहचान लिया था। अतः अन्त समय अन्य दोनों पुत्रों को पास बुलाकर कहा था कि तुम दोनों घनश्याम को संभाल लेना। वह गृहस्थी नहीं बनेगा और भूखा रहेगा किन्तु भोजन मांगेगा नहीं।

माता-पिता को दिव्यगति प्रदान करने के बाद घनश्याम महाप्रभु ने शीघ्र ही गृहत्याग का निर्णय अपने अंतर में ले लिया। छपैया में पिप्पल के पेड़ पर चढ़ कर वह बार-बार पश्चिम दिशा में देखते रहते थे। मित्रमंडली पूछती थी, 'भैया, वहां क्या देखते हो?' घनश्याम का प्रत्युत्तर मार्मिक था-'पश्चिम में मुमुक्षुओं ने देह धारण किये हैं। वे मेरा इंतजार कर रहे हैं। अतः मैं बार-बार उस ओर देख रहा हूं।' इस प्रकार घनश्याम प्रभु ने सौराष्ट्र और गुजरात में जाकर वहीं से भागवतधर्म का प्रवर्तन करने का निश्चय किया ही था। किन्तु इसके पूर्व उत्तर से पूर्व भारत और वहां से दक्षिण भारत में भ्रमण करके भिन्न-भिन्न तीर्थक्षेत्र के दर्शन करने का, मुमुक्षुओं को मार्गदर्शन देने का, अनाचार का उन्मूलन करने का निर्णय किया। साथ-साथ भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रवर्तित मोक्ष की भावना और परमात्मा के स्वरूप के बारे में भिन्न-भिन्न मतपरस्त दार्शनिकों का निरीक्षण करने का भी निर्णय किया।

किन्तु इसे क्रियान्वित करने के लिए महाभिनिष्क्रमण करने का मौका वह ढूंढ रहे थे। इतने में जैसा कि पूर्वनिश्चित हो एक बार किसी ने घनश्याम के बड़े भाई रामप्रताप जी को शिकायत की। भैया ने घनश्याम को तीव्र उपालभ्य दिया। घनश्याम ने केवल इतना ही कहा, 'अब आपके समक्ष मेरे बार में शिकायत नहीं आयेगी।'

इस मर्मवचन का भेद की कल्पना भी रामप्रताप जी को शायद आयी नहीं होगी। घनश्याम दूसरे ही दिन अदृश्य हो गये। बाद में भाई ने मंदिरों में, अखाड़ों में, मित्रमण्डली में घनश्याम की खोज की, किन्तु पता ही नहीं लगा। घनश्याम तो अपने उद्देश्य की ओर चल पड़े थे। बड़ा उद्देश्य था–

- इस पवित्र भारतभूमि में हर प्रदेश के मुमुक्षुओं के साथ संबंध प्रस्थापित करके उन को मोक्ष दिलवाने का,
- असुरों को नहीं आसुरीभाव को निर्मूल करने का,
- गुजरात को प्रमुख कार्यक्षेत्र बनाकर चार प्रचलित सम्प्रदायों में नया पांचवां सम्प्रदाय की स्थापना करने का,
- और अक्षरधाम का दिव्यजीवन जीनेवाले मुक्त और संतों की भव्य परम्परा का निर्माण करने का।

सर्प जैसे कंचुली उतारते हैं इस प्रकार सब सम्बन्धों से मुक्त हो कर, जन्मभूमि 'छपैया' का ममत्व भी क्षण में दूर कर, कृतसंकल्प एवं कृतनिश्चय तपस्वीरूप धारी घनश्याम ससीम से असीम की ओर चल पड़े।

11 साल की छोटी आयु में सन 1792 के जून की 19वीं तारीख (संवत 1849 के अषाढ़ मास की शुक्ला दशमी का दिन) घनश्याम प्रभु का महाभिनिष्क्रमण का दिन था।

वनविचरण

नीलकंठवर्णी घनश्याम के वनविचरण की कथा अद्‌भुत और चमत्कारपूर्ण है। दिव्य किशोरमूर्ति महान अघोर वन में खेचर, भूचर, जलचर, भूत, प्रेत किसी के डरे बिना ठंड, धूप, क्षुधा, पिपासा सब का अनादर कर के मुमुक्षुओं को स्वरूपदर्शन करवाने के लिये-इन का आत्यंतिक कल्याण करवाने के लिये चले जा रहे थे। असाधारण दैहिक कष्ट आमंत्रित कर रहे थे। प्राग् ऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक युग की महाकथाओं में, भारत के धार्मिक इतिहासों में यह महायात्रा स्वर्णाक्षरों में अंकित है। कोमल देहयष्टि के, किशोर आयु के घनश्याम छपैया की भोली प्रजा, विरही आत्मजन, मित्रमंडली-सबको रुदन सागर में छोड़ कर चले। क्यों? महान उद्देश्य के लिये। वर्षों से भगवत्प्राप्ति के लिये अथक तपश्चर्या करने वाले संत, महात्मा, योगी, ऋषि और मुनियों को दर्शन देने के लिये अयोध्या से निकले, सरयू नदी के सामने किनारे उतरे और उत्तराभिमुख देवतात्मा हिमालय की ओर चले। यहां घर में, गांव में बड़े भैया चारों ओर खोज रहे थे–'कहां है घनश्याम।'

किन्तु घनश्याम अब घनश्याम नहीं रहे थे। वह तो नीलकंठ ब्रह्मचारी के छद्‌म वेश में थे। भाल में उर्ध्वपुंड

तिलक है। बीच में रोली का गोल टीका है, कमर पर मुञ्ज की मेखला है, कौपीन है, उत्तरीय के रूप में मृगचर्म परिधान किया है। गले में तुलसी की माला है, बायें स्कंध पर यज्ञोपवीत है, शालिग्राम और नित्य पाठ की पोथी कपड़े में बंधी हुई है, एक हाथ में पलाश का दंड है और दूसरे हाथ में माला, कमंडल और भिक्षापात्र के साथ जल छान ने का वस्त्र है। ऐसे बटुक ब्रह्मचारी, सब को दर्शन देते हुए आगे और आगे चले जा रहे थे।

प्रथम निवास किया श्रीपुर के खाखी महात्मा के मठ में। रात में वहां एक बाघ आया। उसको समाधिस्थ कर दिया। यह देख कर महात्मा को अत्यंत आश्चर्य हुआ। नीलकंठ ने महात्मा जी को परमात्मास्वरूप का उपदेश दिया, नश्वर जगत का परिचय करवाया। फलस्वरूप महात्माजी को पूर्ण वैराग्य प्राप्त हुआ।

वहां से प्रस्थान कर के उन्होंने नेपाल की ओर प्रयाण किया। नेपाल का महाराजा नीलंकठ ब्रह्मचारी के अद्‌भुत ऐश्वर्य संपन्न स्वरूप के दर्शन से अत्यधिक प्रभान्वित हुए और स्वर्णसिद्धि का नुस्खा सिखाने की प्रार्थना की। नीलकंठ ने इस बात का निषेध किया और मोक्ष का मार्ग दिखलाया।

नेपाल से आगे निकल कर उन्होंने महारण्य में प्रवेश किया। वहां नीलकंठ स्वयं भगवत्स्वरूप थे किन्तु उन्होंने गोपालयोगी से अष्टांगयोग का अध्ययन किया। गोपालयोगी स्वयं जानते थे कि मेरी तप साधना के पुण्य प्रताप से मुझे दर्शन दिये हैं और परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार हुआ, दूसरी ओर नीलकंठ का योगाभ्यास पूर्ण हुआ। गोपालयोगी ने देहविसर्जन कर दिया, जैसे की इसी लिये ही अभी तक देह धारण कर रखा था। गोपालयोगी की उत्तर क्रिया सम्पन्न कर के नीलकंठवर्णी ने पूर्वदिशा की ओर प्रस्थान किया। आदिवराह होकर बंगभूमि में प्रवेश किया। उस भूमि में उस समय जंतर-मंतर का बोलबाला था। धर्म के नाम से, भक्ति के नाम से देव-देवीओं के उपासक और सिद्ध, पाखण्ड का आचरण कर के भोली प्रजा की श्रद्धा का दुरुपयोग कर रहे थे। शास्त्रार्थ में नीलकंठ ने इन सब को परास्त किया। पूर्व बंगल के सीरपुर नगर के भक्तिप्रिय राजा श्री सिद्धवल्लभ ने उनको चातुर्मास अपनी नगर में रहने का अनुरोध किया और यथोचित आदरसत्कार किया। यहां रह कर नीलकंठ ने भक्ति की सच्ची पद्धति सिखाई, साधु-असाधु के लक्षण समझाये और कल्याण का मार्ग दिखलाया।

सीरपुर में चातुर्मास समाप्त कर वर्णी ने कामाक्षी की ओर प्रयाण किया। वहां वाममार्ग का प्रचलन था। वाममार्गिओं का मुखिया 'पिबक' तांत्रिक विद्या से मलिन देवीओं का आवाहन करके लोगों को डराता था। जब नीलकंठ को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने मुखिया को उनकी विद्या का प्रयोग अपने पर अजमाने का आवाह्न दिया। 'पिबक' ने मंत्रित उड़द पेड़ पर फेके; पेड़ सूख गया। लोगों ने समझाया की नीलकंठ जी-यह राक्षस है, आप हठाग्रह छोड़ दो। किन्तु चौदह वर्षीय नीलकंठ ने आवाह्न दे ही दिया था। 'पिबक' ने देवी-देवता-भूत-भैरव सबका आवाहन किया और उन सब को नीलकंठ के प्रति छोड़ दिये। किन्तु स्थितप्रज्ञ नीलकंठ का दर्शन करके ये सब भाग गये। 'पिबक' का पराजय हुआ और उन्होंने नीलकंठ का शरण स्वीकार किया। इस प्रकार हजारों वाममार्गिओं ने आदर्श सात्त्विक भक्तिमार्ग अपनाया।

कामाक्षी से नीलकंठ नवलखा पहाड़ गये। यहां नवलाख योगेश्वर अहर्निश परब्रह्म परमात्मा का निरंतर भजन-स्मरण करते थे और महाप्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में स्तुतिपाठ करते थे। महाप्रभु नीलकंठ ने नवलक्ष स्वरूप प्रगट करके सब योगियों को एक साथ ही दर्शन दिये और इन के मनोरथ पूर्ण किये।

नवलखा पर्वत उतर कर बावलाकुंड हो कर गंगासागर संगम को पास के कपिलाश्रम में नीलकंठ वर्णी आये। शस्त्र लिये बिना केवल बुद्धि से ही हर परिबलों के साथ संघर्ष कर के, नीलकंठ महाप्रभु ने यहां भी शाक्त असुरों का ध्वंस किया।

यहां से फिर आगे बढ़े और एक गांव में वैरागी के मंदिर में ठहरे। इस मंदिर में एक साधु रामायण की कथा कर रहा था, किन्तु रामायण के गूढ़ार्थ कुछ उलटे ढंग से समझा रहा था। वर्णी को दया आई और उन्होंने साधु की अनुज्ञा लेकर रामायण का सही अर्थ समझाया। प्रतिभा सम्पन्न वर्णीप्रभु की परावाणी सुनकर सब अत्यन्त प्रसन्न हो गये। स्त्रियां तो मुग्ध ही हो गई। यहां के गृहस्थ वैरागी के पुत्र जयरामदास को नीलकंठ महाप्रभु का अद्‌भुत आकर्षण हुआ और वह उनके पास शास्त्रों का अध्ययन करने लगा। एक दिन जयरामदास को वर्णी के दिव्यवपु के दिव्यतेज प्रसृत होता हुआ दिखाई पड़ा और उसको दिव्य समाधि में अक्षरधाम में स्थित परब्रह्म के रूप में वर्णी दिखाई पड़े। समाधि से जागृत होने के बाद इनको दृढ़ निश्चय हो गया कि वर्णी स्वयं भगवान हैं।

इस प्रसंग से नीलकंठ वर्णी की प्रसिद्धि सर्वत्र हो गई। किन्तु ऐसा सम्मान कल्याण के मार्ग में विघ्नरूप है ऐसे एक आदर्श हेतु वहां अल्प समय रह कर वर्णी ने स्थान का त्याग किया। जयरामदास अपनी माता की अनुज्ञा लेकर पीछे गये और खोजते-खोजते जगन्नाथपुरी में वर्णी को मिले और उनकी सेवा में जुड़ गये।

जगन्नाथपुरी में इन्द्रधुम्न सरोवर के किनारे दो हजार नागासाधुओं की मंडली के साथ वर्णी ने रहने का निर्णय किया। नीलकंठवर्णी की क्रिया से इन साधुओं को अत्यंत आश्चर्य हुआ, किन्ती वर्णीराट् की दिव्य प्रतिभा देख कर कोई कुछ नहीं बोल सके। वर्णी भी अत्यन्त नम्रता से इन साधुओं के मुखिया की सेवा करते थे। अतः उनको वर्णी के प्रति सद्भाव हो गया, परन्तु इन साधुओं के अश्लील कर्म देख कर वर्णी ने सोचा कि इन का नाश होना चाहिए।

इन लोगों की वर्णी सेवा करते रहे किन्तु एक बार एक वैरागी साधु ने कहा–'खेत में से चौलाई की हरी सब्जी ले आओ।' स्वभाव से अत्यन्त अहिंसामय भावनापूर्ण, कृपापूर्ण वर्णी ने कहा–'इन में तो जीव है, हम नहीं तोड़ेंगे।' बस इतनी सी बात में वैरागी को क्रोध आया और उन्होंने वर्णी की हत्या करने के लिए तलवार उठाई। दूसरा वैरागी बीच में पड़ा और वहां तो समरांगण हो गया। दो हजार नागा साधु इस प्रकार आपस-आपस में लड़कर मर गये। इस प्रकार पापी, अधर्मी, अनाचारी आदि के बोझ से पृथ्वी को मुक्त कर वर्णी ने यहां से प्रस्थान किया। फिर आदिकूर्म, मानसपुर, वेंकटाद्रि शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, श्रीरंग, रामेश्वर, धनुष्कोटी आदि तीर्थों की यात्रा कर के वर्णी ने पश्चिम सागर के किनारे-किनारे फिर से उत्तर की ओर प्रयाण किया। सुंदरराज, भूतपुरी, पद्मनाभ, साक्षीगोपाल आदि तीर्थों का दर्शन कर के नीलकंठ पंढरपुर पहुंचे और वहां दो मास निवास किया। इसके बाद नासिक हो कर उन्होंने गुजरात की ओर प्रस्थान किया और अंत में सौराष्ट्र की धरती पर पदार्पण किया।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखे तो सात वर्ष, एक मास और ग्यारह दिन की यह कष्टप्रद यात्रा पूर्वयोजित ही थी। इस यात्रा में जैसा कि आगे देखा असुरों का संहार हुआ, प्रचलित सम्प्रदायों की–परंपरागत धर्म की और धर्मगुरुओं की भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षतियों का दर्शन हुआ। अतः उन्होंने विशुद्ध सम्प्रदाय की स्थापना कर के मुमुक्ष प्रजा को अभय प्रदान कर कल्याण का मार्ग सरल बनाना सोचा और सर्वधर्मसमन्वय द्वारा मानवजीवन के कल्याण का संकल्प किया। वास्तव में यह यात्रा इसकी पूर्वभूमिका रूप थी। असाधारण तैजस्विता, बुद्धिमत्ता, स्पष्ट निरीक्षण शक्ति और अद्वितीय संशोधन वृत्ति से इन्होंने गीता, उपनिषद, श्रीमद् भागवत् आदि प्राचीन भारतीय ग्रंथों का गहन अध्ययन किया और धर्म का असली रहस्य समझ कर बहुजन समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए वे कृतसंकल्प हुए।

उनकी आर्षदृष्टि और असाधारण संयोजन-शक्ति से इन्होंने गुजरात को अपनी कर्मभूमि बना कर न केवल स्वामिनारायण संप्रदाय की स्थापना ही की किन्तु उसकी सुदृढ़ नींव स्थापित की और एक सुव्यवस्थित, सुविशाल रचना की। उद्देश्य था–हिन्दुधर्म का पुनरुत्थान करने का और उसे नव संजीवनी देने का।

–क्रमशः

★ ★ ★

Unique and Unparallel Boons

Lord Swaminarayan is worshipped as the supreme incarnation of all incarnations-the transcendental highest spiritual personified Divine Entity-immanent in all beings and pervading the universe through His everlasting Eternal Personified Brahman and Jivanmuktas of free souls. By His infinite grace, compassion, love and charity Lord Swaminarayan gave certain boons and assurances to humanity which have been listed here. He is the only spiritual supramental dynamic reality who has given these assurance to all aspirants and followers who sincerely believe in Him and adhere to all His commands and instructions given in His 'Shikshapatri' and 'Vachanamrits' written in His presence and verified and confirmed by Him.

His 'Shikshapatri' would ward off all the troubles if carefully observed and adhered to Thus, it is meant for the benefit of all human beings as 'Serva Jiva Hitavaha.' Including His Vedanta philosophy in very subtle form and covering all phases of life in this small booklet. He showed the simple and straight, sure and secured path to Salvation.

His Gospels are compiled verbatim in the Holy text 'Vachanamrit.' These are the spiritual discourses which He preached to His followers in the assemblies of saints and devotees over a course of many years in simple yet effective lucid manner.

(A) The boons given by Lord Swaminarayana:

1. To all His disciples and followers He guaranteed the basic needs of life.
2. That He will deliver and liberate the soul at the last moment on the point of death and give direct 'darshana' or vision and take the soul to His eternal Abode Akshar-dham, which is full of bliss, joy, divine love and ever illuminated place of Jivanmuktas and free souls. What is still more remarkable is that it is not the Master alone who is thus seen in the form of divine vision, but number of times He comes with His principal disciples in the company of sadhus and the continuity of the same process is also guaranteed even now and for ever.
3. That all His followers will be saved from universal hardship such as natural calamities and devilish forces, provided there is total surrender and unique 'upasana' or reverence and devotion in Him alone in adversity or prosperity, in good or bad external apparant situations, conditions or behaviour patterns.
4. The transformation of the crude nature was attained easily in His company or in the association of His realised saints but He further enabled the jivatma or the inner being to assume completely His divine nature through Akshar - Brahman, so that Jiva could become Brahma - Swaroop and can permanently remain in communion with Para-Brahman for enjoying His powers, qualities, bills-consciousness in this very life and the life beyond.
5. Instead of rigorous disciplinic exercises, penances, tapaysa and other rituals leading to final salvation. He paved the way to final salvation on the basis of aspiration, true surrender, sincere prayer and love towards God and His saints.
6. The greatest bon given to humanity is the authenticity of the divine existence to remain constant and continuous in the form of personified Brahma - Swaroop Realised souls or Gunatit saints or Visionary Jivamuktas.
7. Like the illuminated souls, others also get spiritual visions and peace of mind by working like Janaka-Videhi-devoid of all desires and passions and single pointed devotion to the Lord by obeying the commands of Divinely Personified Spiritual Masters.
8. He vehemenly discarded blind faith and faulty surrender to an Avatar or Guru. The acid test before finally accepting the bonafide spiritual master was based on revated truths, natural inspiration and pure reason. He openly declared three aspects of the Guru's life to be critically examined i.e.
   (a) Previous Guru's divine powers and qualities.
   (b) His own life reflecting constant spiritual equality and harmony in day-to-day life and
   (c) The life and behaviours patterns of His dearest chosen devotees or Sadhakas who may have attained Brahmic Sthiti through Him.
9. Manavadharma or Seva was considered as the essential quality of the Saints and creation of such spiritual atmosphere and activities for uplifting mankind forgivennces, avidya and cycles of birth and death.

This is fully recorded in the Royal Asiatic Magazine in the year 1880 and Mr. Williams has also highly appreciated about the popularity of the great mystical reformer Sahajanand Swami, whom he met at Baroda. The then governor of Bombay State Sir John Malcom also accepted Shikshapatri and was really amazed by the wonderful transformation Sahajanand Swami did in the lives of the criminals, dacoits and militant race in Gujarat. Thus from the old records, one finds the greatest adoration and devotion towards The living Supreme Divine Being in His own life time from all faiths and classes of people for entirely re-creating millions of human beings preparing them for leading pure life of righteousness and devotional service to God like the most advanced yogis and Siddhas.

-Contd.

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110 052 फोनः 518838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110 007